डॉ॰ बुद्धदेव प्रसाद सिंह
सहायक प्राचार्य (asst. prof.),
हिन्दी विभाग,
डी.बी. कॉलेज जयनगर

पाठ्य सामग्री,
स्नातक हिन्दी प्रतिष्ठा, प्रथम वर्ष के लिए।

दिनांक- 05.05.2020
(व्याख्यान संख्या- 18)

* कबीर की भक्ति का स्वरूप

ज्ञानमार्गी होते हुए भी प्रेम-रस में पगे और निर्गुण-निराकार तत्त्व के उपासक तथा व्याख्याता होने के बावजूद सगुण भाव-सागर को आलोड़ित करने वाले तथा मुक्तक रचनाओं के अमर गायक होने के बावजूद एक स्वर से महाकवि के रूप में मान्य कबीर की भक्ति ने भारतीय जनमानस को उस समय अवलंबन प्रदान किया था जब वह सिद्धों और योगियों की गुह्य साधना से ऊब रही थी। कबीर कालीन परिस्थितियों में धार्मिक अवस्था का अवलोकन करते समय यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि उस समय प्रचलित अनेक प्रकार की धर्मसाधनाएँ जनता को भूल-भुलैया में डाल रही थीं। इस महान संत ने अपनी प्रेमा भक्ति का ऐसा सम्बल और दृढ़ अवलंबन धर्मप्राण जनता को प्रदान किया कि वह रामरस में भाव विह्वल हो डूब उठी। यद्यपि कबीर से पूर्व रामानंद ने भी भक्ति की ऐसे ही भावपूर्ण धारा बहायी थी परंतु उसका प्रसार क्षेत्र सीमित ही रहा था। रामानंद की भक्ति को फैलाने का श्रेय सबसे बढ़कर कबीर को ही प्राप्त है :-

"भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद।
परगट किया कबीर ने सप्तद्वीप नव खंड।।"

कबीर की भक्ति पर वैष्णव विचारधारा का भी आंशिक प्रभाव पड़ा है। कबीर पर पड़ने वाले आध्यात्मिक प्रभाव में इसकी उपस्थिति स्पष्ट प्रतिबिंबित होती है। कबीर ने अपनी भक्ति में जिस आराध्य का वर्णन किया है वह उपनिषदों की अद्वैत भावना से प्रभावित है। कबीर की ब्रह्म भावना अधिकांशतः अद्वैत भाव धारा के ही निकट है, किंतु कहीं-कहीं अद्वैत से भिन्न भी है। इसका मुख्य कारण यह है कि कबीर व्यवस्थित रूप से किसी सिद्धांत के अनुयायी या प्रस्थापक नहीं है। उन्होंने ब्रह्म का जो कुछ वर्णन किया है वह अनुभव के आधार पर किया है। कबीर सबसे पहले साधक हैं और बाद में कवि। अतः भक्ति साधना में जिस-जिस रूप में वे ब्रह्म-स्वरूप का साक्षात्कार करते जाते हैं उसी-उसी रूप में उसे बताते हैं। कविता के माध्यम में 'निज ब्रह्म-विचार -- आतम साधना' को व्यक्त करते हैं। यही कारण है कि कबीर के

ब्रह्म का स्वरूप हमारे सम्मुख कभी किसी रूप में तो कभी किसी रूप में आता है। ब्रह्म के स्वरूप परिवर्तन का वास्तविक कारण यही है कि वह किसी भी दार्शनिक वाद के मानदंड से परे है। तार्किक विवाद से ऊपर हैं। पुस्तकीय विद्या से अगम्य पर प्रेम से प्राप्य हैं। अनुभूति का विषय हैं, सहज भाव से भावित हैं। कबीर ने ब्रह्म की स्थिति सर्वत्र उसी भाँति मानी है जिस प्रकार अद्वैत भावना के पोषक प्रतिबिंबवाद में। उन्होंने किसी वाद का अनुकरण नहीं किया है, बल्कि ईश्वर की सर्वव्यापकता का वे जैसा अनुभव करते थे, उसकी जो अभिव्यक्ति हुई है वह उस भाव धारा के निकट जाती है। उनका कहना है :-

"जल में कुंभ कुंभ में जल है,
बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना,
यह तत कथ्यो ग्यानी।।"

यहाँ वे पूरी तरह अद्वैतवादी ही प्रतीत होते हैं। कबीर की निर्गुण भाव धारा में सगुण भक्ति के भी ढेर सारे तत्व मिले हुए हैं। वे तत्वतः परमात्मा को निर्गुण-निराकार अवश्य मानते हैं पर उपासना के रूप में सगुण शब्दावली का ही उपयोग करते हैं।

कबीर ने भक्ति को मुक्ति का एकमात्र साधन माना है। उनके भगवत् प्रेम के दो आदर्श हैं सती और शूर। सती के आदर्श चुनने में एक तो प्रेम की अनन्यता प्रकट होती है, दूसरे भक्त भगवान के अधिक निकट आ जाता है। वास्तव में सतीभाव का आचरण करने पर भक्त तो अपने गुरुतर कर्तव्य से मुक्त हो जाता है और उत्तरदायित्व प्रभु पर आ जाता है। शूरवीर का आदर्श उन्होंने संभवतः इसलिए अपनाया है कि वास्तव में साधना मार्ग में जीवन की कठिनता, साहस और लक्ष्य के लिए दत्तचित्त होने की आवश्यकता शूर के ही समान है। जिस भाँति शूरवीर युद्ध में लोहे की करारी मार के सम्मुख भी तिलभर भी नहीं मुड़ता और प्राण उत्सर्ग कर अपने कर्तव्य की रक्षा करता है, वही स्थिति सच्चे भक्तों के लिए आवश्यक है। ये दोनों आदर्श कबीर की भक्ति की अनन्यता में सहायता पहुँचाते हैं। सर्वस्व समर्पण के साथ-साथ अपने अस्तित्व को साध्य में लीन करने की उत्कृष्ट भावना कबीर में परिलक्षित होती है। माया के आवरण में ऐसे प्रभु से दूर होने के बोध को प्राप्त कर लेने पर स्वाभाविक है कि विरह भावना भी अनिवार्यतः अनुस्यूत होगी। इसलिए कबीर की अभिव्यक्ति में विरह का प्रमुख स्थान है। जब अनुपम-अद्वितीय प्रियतम को आत्मा नहीं पाती तो उसके वियोग में खूब तड़पती है। कबीर काव्य की यह तड़पन मीन से कम नहीं। जब से गुरु ने उस परमात्मा का ज्ञान कराया तब से ही भक्त उसके लिए आकुल व्याकुल हैं। कबीर की भक्त आत्मा ने इस विरह का जो वर्णन किया है वह इतना स्वाभाविक और मार्मिक है कि लगता है कबीर का सारा अक्खड़पन और फक्कड़पन यहाँ भाव सागर में डूब जाते हैं।

कबीर ने भक्ति का द्वार सबके लिए खोलकर सबको उसका अधिकारी बताया है। वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि में किसी भांति का भेदभाव नहीं है, क्योंकि सबकी रचना उन्हीं पाँच तत्वों से हुई है और सबका स्रष्टा पिता एक ही परमात्मा हैं। इस भक्ति मार्ग के एकमात्र मार्गदर्शक गुरु हैं और इसे पुष्ट करने वाला साधुओं का सत्संग है। इस पथ पर चलने वाले को कबीर कनक और कामिनी की अति से बचने की सलाह देते हैं तथा आहार-व्यवहार शुद्ध रखने पर भी बल देते हैं। कबीर की भक्ति की यह ज्ञान सलिला अपने साथ सबको पावन करती हुई परमात्म तत्व से साक्षात्कार करवाने वाली है।